निष्कर्ष

भारत में तीन माध्यम सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। जिनके संबंध में हर घर, गली, चौराहे पर लोग चर्चा करते हुए देखे जा सकते है। सिनेमा, क्रिकेट और राजनीति यह तीनों ही भारत में सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। तीनों ही माध्यमों में महिलाओं की संख्या अपेक्षाकृत कम है। सिनेमा के संदर्भ में महिलाएं सिर्फ अभिनय और गायन में ही पर्याप्त संख्या में सक्रिय हैं। इसका प्रमुख कारण स्त्री पात्रों और स्त्री स्वर के लिए उनकी अनिवार्यता है। जबकि फिल्म के अन्य विभागों में उनकी संख्या बहुत कम है। जब से सिनेमा का जन्म हुआ है तब से ही सिनेमा में पुरुष वर्चस्व बना हुआ है। इसका प्रमाण अभिनेता एवं अभिनेत्रियों को मिलने बाली फीस का अंतर है। इसका दूसरा प्रमाण है कि पुरुष 50 वर्ष से ज्यादा की उम्र में भी मुख्य नायक का किरदार निभाते है। जबकि उनकी सह कलाकार उनसे आधी से भी कम उम्र की होतीं है। अभिनेता इतनी उम्र तक नायक बने रहते है, जबकि अभिनेत्री 35 वर्ष के बाद इंडस्ट्री छोड़ देती है या सहायक भूमिकाएं निभाने लगती है।

हिंदी सिनेमा ने एक लंबा सफर तय किया है। भारतीय सिनेमा 104 साल पुराना हो चुका है उसमें महिलाओं का सफर भी 104 साल पुराना है। आज भारतीय सिनेमा की पहुँच घर-घर तक हो गई है। अब शहर ही नही गाँव की लड़कियां भी सिनेमा में काम करने का सपना देखने लगीं है। लेकिन 98% लड़कियां अभिनेत्री या गायिका बनने का सपना देखतीं हैं। सिर्फ 2% लडकीयां ही निर्देशक या अन्य किसी विभाग में काम करने के संबंध में सोचती है। फिल्म एक अत्यंत महंगा माध्यम है। महिला फिल्म निर्देशकों अपनी फिल्म के लिए धन की व्यवस्था करने में काफी कठिनाई होती है। यदि उनकी पहली फिल्म असफल हो जाती है तो उन्हे अगली फिल्म के लिए कोई निर्माता नही मिलता और वह एक ही फिल्म बनाकर रह जातीं है। महिलाओं को फिल्म के लिए धन जुटाना एक बड़ी समस्या रही है। फिल्म इतिहास में जो महिलाएं सफल हुई है एवं जिन्होंने निर्देशक के रूप में अपनी पहचान बनाई है। वे फिल्मी परिवारों से थी या निर्माता का दयितत्व उन्होंने स्वंय निभाया।

भारतीय नारियों ने सभी क्षेत्रों में अपने साहस का परिचय दिया है। कुछ महिलाएं सारी कठिनाइयों को दरकिनार करते हुए निर्देशन के क्षेत्र में आआईं। सन 1926 में फातिमा बेगम ने फिल्म निर्देशन के चुनौतीपूर्ण क्षेत्र में महिलाओं का खाता खोला इसके बाद जद्दन बाई, प्रोमिला दास गुप्ता, शोभना समर्थ आदि महिला निर्देशकों ने इस कार्य आगे बढ़ाया। इस क्षेत्र में बड़ा एक बड़ा परिवर्तन 1977 में देखने को मिलता है। जब साईं परांजपे ने हिंदी सिनेमा में फिल्म निर्देशक

के रूप में अपना स्थान बनाया। इसके बाद हिंदी सिनेमा में भारत की पहली फिल्म प्रशिक्षित महिला फिल्म संपादक एवं निर्देशक ने हिंदी सिनेमा में कदम रखा। अरुणा राजे ने FTII से फिल्म संपदान तथा फिल्म निर्देशन में प्रशिक्षण प्राप्त किया है। अरुणा राजे ने फिल्म निर्देशन को करियर के रूप में अपनाया और हिंदी सिनेमा में 'स्त्री विमर्श' की एक नई धारा का प्रारम्भ किया। स्त्री विमर्श को को लेकर फिल्में तो मूक दौर से ही बनने लगी थी जिनमें अछूत कन्या, दुनिया न माने आदि में स्त्री समस्याओं को प्रस्तुत किया गया। सवाक युग में हमारी बेटी, दहेज, आदमी, मदर इंडिया, सुजाता, बंदिनी, देवदास आदि महत्त्वपूर्ण रूप से उल्लेखनीय है। लेकिन इन सभी फिल्मों में स्त्री समस्याओं को उसकी स्थापित छवि जो हमने किताबों और ग्रन्थों में पढ़ी है व लोक कथाओं में सुनी है में ही प्रस्तुत की गईं।

सन 1988 में अरुणा राजे पाटिल निर्देशित फिल्म 'रिहाई' में पहली बार उन्होंने स्त्री की भावनाओं को गहन संवेदना के साथ पर्दे पर प्रस्तुत किया। वर्षों से रूढ़ियों में जकड़ी स्त्री की रिहाई के लिए आवाज उठाई। इस दृष्टिकोण से उनकी शक, गहराई, रिहाई, भैरवी आदि महत्त्वपूर्ण फिल्में है। इसी कड़ी में विजया मेहता ने 'राव साहेब' में आधुनिक और पुरातन मान्यताओं के बीच में फसी स्त्री के द्वंद को बहुत गंभीरता से प्रस्तुत किया है। कल्पना लाज़मी जो अपनी नारीवादी फिल्मों के लिए पहचानी जाती है उन्होंने धनाढ्य और बाहुबली व्यक्तियों के द्वारा स्त्री के होने वाले शोषण की पूरी महागाथा को ही पर्दे पर संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। दीपा मेहता ने स्त्री की दमित भावनाओं का प्रभावपूर्ण चित्रण 'फायर' में प्रस्तुत किया है। साथ ही उन्होंने वॉटर में विधवाओं की न केवल समस्या से अवगत कराया बल्कि समाज में होने वाले उनके पूरे शोषण की व्यथा को प्रस्तुत कर, कई ऐसे सवाल उठाएँ है जो आज भी जवाब मांग रहे हैं।

भारतीय मूल की ब्रिटिश महिला फिल्म निर्देशक गुरिंदर चड्डा ने भारतीय परिवारों में लड़कियों और स्त्रियों प्रति क्या दृष्टिकोण होता है, इसकी नब्ज पकड़ी है। गुरिंदर चड्डा कहती है कि 'भारतीय परिवार चाहे जितने शिक्षित और समृद्ध हो जाए बेटियों के संबंध में उनका दृष्टिकोण आज भी परम्परावादी' है। इसे उन्होने अपनी फिल्म 'बैंड लाइक इट बैकहैम' में स्त्री और फुटबॉल खेल के माध्यम से बहुत सुंदरता से प्रस्तुत किया है। ज़ोया अख्तर समकालीन दौर कि प्रतिभाशाली फिल्म निर्देशक है उन्होंने अपनी फिल्म 'दिल दड़कने दो' में परिवार में स्त्री की अस्मिता, अधिकार और उसकी अपनी भावनाओं के साथ जीने की बात को सहजता के साथ पर्दे पर प्रस्तुत किया है। गौरी शिंदे ने अपनी पहली ही फिल्म से स्त्री के साहस, योग्यता, कुछ कर

गुजरने की क्षमता एवं उसकी प्रगतिशीलता को एक सार्थक विषय के माध्यम से 'इंग्लिश विंगलिश' में प्रस्तुत किया है। उन्होने अपनी पहली ही फिल्म से एक सार्थक फिल्म निर्देशक के रूप में पहचान बनाई है। सन 2016 में लीना यादव ने एक गाँव को फिल्म की पृष्ठभूमी का आधार बनाकर स्त्री शोषण एवं उसकी दमित इच्छाओं को प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया है। 'पार्चड' आधुनिक दौर में हुए असमान विकास कि स्याह तस्वीर पर्दे पर स्पष्ट देखी जा सकती है। आज भी भारत के गाँवों में बाल-विवाह हो रहे है, धड़ल्ले से दहेज दिया और लिया जा रहा। आज भी कई गाँव ऐसे है जहां बिजली और शिक्षा के नाम पर सिर्फ खाना पूर्ति ही हुई है। भू-मंडलीकरण एवं तकनीक ने ऐसे क्षेत्रों पर 'अधूरा ज्ञान विष के समान' बाला प्रभाव डाला है। सन 2017 में बहुत दिनों के बाद अलंकृता श्रीवास्तव ने अलग-अलग पृष्ठभूमी और उम्र की महिलाओं के माध्यम से स्त्री की दमित कुंठित भावनाओं को बिना किसी औपचारिकता के स्पष्टतः प्रस्तुत किया साथ ही पुरुषों की स्त्री को सेक्स संपत्ति समझने वाली मानसिकता को भी उजागर किया है। इस युवा महिला निर्देशक का यह सार्थक प्रयास है।

आज़ादी इतने वर्षों बाद भी हिन्दी सिनेमा में फिल्में नायक के नाम पर ही चलती है। इस बीच कुछ ऐसी महिला फिल्म निर्देशक भी हुईं हैं जिन्होंने नायिका प्रधान फिल्मों के माध्यम से स्त्री कि समस्याओं को केंद्र में रखकर फिल्मों का निर्देशन किया है। इसमें महिलाओं की पारिवारिक समस्या, सेक्स संबंधी समस्या, विवाह संबंधी समस्या, बाल विवाह, स्त्री शिक्षा, स्त्री स्वतंत्रता, स्त्री समानता, स्त्री शोषण, पुरातन मान्यताओं से मुक्ति एवं महिला सशक्तिकरण के सार्थक विषयों के साथ फिल्मों का निर्देशन किया है। उन्होने इससे अलग विषयों पर भी उम्दा फिल्में निर्देशित की हैं। लेकिन उनकी अधिकतर फिल्मों में स्त्री समस्याएं ही केंद्र में रही। हिन्दी सिनेमा में महिला फिल्म निर्देशकों ने स्त्री की परम्परावादी स्थापित सौन्दर्य, प्रेम प्रतिमा एवं ममता, त्याग, बलिदान की देवी वाली छवि का खंडन करके उसके वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत किया है। इस धारा को स्मृद्ध करने में श्याम बेनेगल एवं मधुर भंडारकर जैसे अन्य निर्देशकों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहीं है।

भारतीय हिन्दी सिनेमा का सफर 104 वर्ष पुराना हो जाने के बाद भी महिला फिल्म निर्देशक अपने आप को निरंतर स्थापित करने के लिए प्रयासरत हैं। सन 2000 से वर्तमान तक रिलीज फिल्मों के आधार पर महिला फिल्म निर्देशकों की संख्या लगभग 03 % है जो बिलकुल संतोषजनक नही है। 1926 से लेकर वर्तमान तक जो भी महिला फिल्म निर्देशक हिन्दी फिल्म सिनेमा में आईं है, अधिकतम महिला निर्देशक फिल्मी पृष्ठभूमी से रहीं है या फिल्म निर्माण में

प्रशिक्षण प्राप्त है। 90% महिला फिल्म निर्देशक अपनी पहली फिल्म बनाने के बाद गायब हो जाती है। महिला फिल्म निर्देशकों को अपनी फिल्म के लिए निर्माता खोजना एवं धन की व्यवस्था करना सबसे कठिन कार्य होता है। फिल्म इंडस्ट्री में महिला फिल्म निर्देशकों पर कोई बहुत जल्दी भरोसा नही करता। जब महिला किसी फिल्म का निर्देशन करती है तो उसके निर्देशकीय हुनर और प्रतिभा को बाद में देखा जाता है, पहले यह देखा जाता है कि वह महिला है। महिला फिल्म निर्देशक को अपनी फिल्म के लिए मार्केटिंग करना एक मुश्किल कार्य होता है। फिल्म बनाने के बाद उसे रिलीज करना महिलाओं के लिए सबसे बड़ी चुनौती होती है। हिंदी सिनेमा में महिला फिल्म निर्देशकों की संख्या बहुत कम है इसलिए उनकी फिल्मों की संख्या भी कम है। लेकिन उन्होंने सीमित संसाधनों में जो फिल्में बनाईं है, वह मनोरंजन के साथ बहुत सार्थक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि वाली रहीं है। सामान्य दर्शक की बात छोड़िए सिनेमा से जुड़े अधिकतम लोगों को महिला निर्देशकों के संबंध में पर्याप्त जानकारी नही है। सिनेमा के शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में अनेक कार्यक्रम आयोजित किए गए, अधिकतम पत्र-पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों ने सिनेमा विशेषांक निकाले उन में भी महिला निर्देशकों का उल्लेख नही मिलता है। यह अत्यंत खेदजनक है।

महिला फिल्म निर्देशक प्रतिभा, योग्यता, साहस, कल्पनाशीलता एवं रचनात्मकता में अन्य निर्देशकों की अपेक्षा किसी भी तरह कमतर नही है। जरूरत है सिर्फ समान अधिकार, सम्मान, भेदभाव रहित एवं शोषण मुक्त अवसरों की समानता। कलाकार को कलाकार अथवा निर्देशक को निर्देशक समझा जाए उनकी प्रतिभा का मूल्यांकन उनके कार्य एवं योग्यता के आधार पर किया जाए न की स्त्री-पुरुष, यहीं से उनके आगे बढने का मार्ग स्वतः ही प्रशस्त जाएगा।